



2026:AHC: 162072

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील संख्या - 1327/1988

पन्ना लाल और एक अन्य

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता	: बृज किशोर पांडेय, कौशल किशोर, वी. सिंह
प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता	: अपर शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या- 93

माननीय न्यायमूर्ति संतोष राय

1. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री कौशल किशोर; राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री पुरुषोत्तम मौर्य को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया गया।
2. आठ अभियुक्त-अपीलार्थियों ने वर्ष 1988 में वर्तमान अपील दाखिल किया है, लेकिन जब आज इस मामले पर सुनवाई की जा रही है, तो हमें सूचित किया गया है कि उनमें से छह अर्थात् पन्ना लाल, भाई राम, मेवा, बिपत, बबुआ और रूप चंद की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए अपील तदनुसार पहले ही उपशमित हो चुकी है। अपील केवल अपीलार्थी संख्या 3 और 7 अर्थात् श्याम कार्तिक और दुर्गा के विरुद्ध शेष है। अपीलार्थी द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 106 वर्ष 1983 (राज्य बनाम भाई राम और अन्य), जो थाना रोहनिया, जिला वाराणसी के मुकदमा अपराध संख्या 46 वर्ष 1982, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 324, 149, 436 से उत्पन्न हुआ है, में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.5.1988 से व्यथित हैं; जिसके द्वारा अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323/149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया है और छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



3. संक्षेप में, अभियोजन का प्रकरण यह है कि परिवादी, विश्राम, ग्राम हरिनागरपुर का निवासी है। उसके घर के दक्षिण में स्थित एक कच्चा रास्ता रोहनिया रोड की ओर जाता है। उसके घर के सामने उसकी सहन भूमि है, जहां उसने मवेशियों के लिए नांद और एक चरनी स्थापित की थी। आरोप है कि उसी गांव के निवासी अभियुक्तों ने मवेशियों के लिए नांद और चरनी को हटाने, परिवादी की सहन भूमि पर जबरन कब्जा करने और उस पर एक छप्परनुमा संरचना खड़ी करने का इरादा किया। 18.2.1982 को सुबह लगभग 9:00 बजे, अभियुक्त, जो एक विधिविरुद्ध जमाव बनाए हुए थे और लाठी-डंडों से लैस थे, परिवादी की भूमि पर पहुंचे और मवेशियों के लिए नांद और चरनी को तोड़ना शुरू कर दिया। जब परिवादी, उसके पिता सुख्खू और श्रीमती मुनरी ने आपत्ति की, तो आरोप है कि अभियुक्तों ने उन्हें गालियां दीं और मारपीट की। शोर मचाने पर कई ग्रामीण मौके पर पहुंच गए, जिसके बाद अभियुक्त भाग गए। आरोप है कि जाते समय कुछ अभियुक्तों ने परिवादी के छप्पर वाले शेड में आग लगा दी, जिसमें मवेशी और घरेलू सामान रखा हुआ था। इसके पश्चात, घायल थाना रोहनिया गए और एक लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 149 और 436 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, और विवेचना शुरू हुआ।

4. विवेचना शुरू हुआ, और गवाहों के बयान दर्ज किए गए। विवेचना के पश्चात, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 324, 149, 436 के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया। मजिस्ट्रेट ने मामले का संज्ञान लिया और इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया, जहां इसे सत्र परीक्षण संख्या 106 वर्ष 1983 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम भाई राम और अन्य), भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 324, 149, 436 के अंतर्गत दर्ज किया गया। अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए। उन्होंने आरोपों से इनकार किया और विचारण की मांग किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने वाद के समर्थन में विश्राम पी.डब्ल्यू.-1, शिव राम पी.डब्ल्यू.-2, रामलाल पी.डब्ल्यू.-3, डॉ. एस.के. उपाध्याय पी.डब्ल्यू.-4, उपनिरीक्षक दूधनाथ सिंह पी.डब्ल्यू.-5 को प्रस्तुत किया है और दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में तात्विक प्रदर्श, प्रदर्श क.1 लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क.2 चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क.3 चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क.4 चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क.5 चोट रिपोर्ट, प्रदर्श क.8 घटनास्थल का नक्शा-नजरी, प्रदर्श क.9 आरोप पत्र को सिद्ध किया है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



6. संक्षेप में अपील के आधार यह हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अवैध है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है, अपीलार्थी के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि और दंडादेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के भार के विपरीत है, अपीलार्थी के विरुद्ध मामला युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध नहीं पाया गया है, सजा बहुत कठोर है और केवल हितबद्ध गवाह प्रस्तुत किए गए हैं तथा स्वतंत्र गवाहों को रोक लिया गया है जिससे निर्णय विधि की दृष्टि में त्रुटिपूर्ण हो जाता है। निर्णय तथ्यात्मक और विधिक कमजोरियों से ग्रस्त है।

7. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने मामले के गुण-दोष में जाए बिना, केवल सजा के बिंदु पर तर्क दिया। अभिवेदन यह है कि अपीलार्थी पूर्व दोषसिद्ध नहीं है, उसने अपील के लंबित रहने के दौरान अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है, अपील स्वयं चार दशकों से अधिक समय से इस न्यायालय के समक्ष लंबित रही है, और यह कि अपीलार्थी की आयु 60 वर्ष से अधिक है, सजा के प्रश्न पर उदार दृष्टिकोण की आवश्यकता है और यदि अभियुक्त को इस न्यायालय द्वारा भी दोषी पाया जाता है, तो उसे परीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।

8. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. का तर्क है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर वर्तमान मामले में अभियुक्त अपीलार्थी को दोषी ठहराकर और छह माह के कठोर कारावास की सजा देकर सही किया है।

9. अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और 5 संदर्भ की सुगमता के लिए नीचे प्रस्तुत की गई हैं:-

"4. सदाचरण की परीक्षा पर कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति।

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है, उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, उसे सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, तो उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे तुरंत कोई सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किया जाए, ताकि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के दौरान, जैसा न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



हो सके और सजा प्राप्त कर सके, और इस बीच शांति बनाए रखे तथा सदाचरण का पालन करे:

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर कोई निश्चित निवास या नियमित व्यवसाय है, जहां न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की संभावना है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश देने से पूर्व, न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश दिया जाता है, तो न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकता है, जिसमें यह निर्देश दिया गया हो कि अपराधी आदेश में नामित परीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में ऐसी अवधि के दौरान रहेगा, जो एक वर्ष से कम न हो, जैसा कि उसमें विनिर्दिष्ट किया जा सकता है, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें लगा सकता है, जो वह अपराधी के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाले न्यायालय को यह आवश्यक होगा कि वह अपराधी को रिहा होने से पूर्व, प्रतिभूओं के साथ या उनके बिना, ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों और निवास, मादक पदार्थों से परहेज या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करने के लिए एक बंधपत्र निष्पादित करने का निर्देश दे, जिसे न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए लगाना उचित समझे।

(5) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के निबंधन और शर्तों की व्याख्या करेगा और पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, प्रतिभूओं, यदि कोई हो, और संबंधित परीक्षा अधिकारी को तुरंत उपलब्ध कराएगा।



5. रिहा किए गए अपराधियों से प्रतिकर और खर्चों का भुगतान करने की अपेक्षा करने की न्यायालय की शक्ति। (1) धारा 3 या धारा 4 के अंतर्गत किसी अपराधी की रिहाई का निर्देश देने वाला न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो उसी समय उसे भुगतान करने का निर्देश देते हुए एक अतिरिक्त आदेश दे सकता है-

(क) ऐसा प्रतिकर जिसे न्यायालय अपराध के किए जाने से किसी व्यक्ति को हुई हानि या चोट के लिए उचित समझे; और

(ख) कार्यवाहियों का ऐसा खर्च जिसे न्यायालय उचित समझे।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत भुगतान किए जाने के लिए आदेशित राशि की वसूली दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 और 387 के प्रावधानों के अनुसार जुर्माने के रूप में की जा सकती है।

(3) कोई सिविल न्यायालय, जो उसी मामले से उत्पन्न किसी वाद का विचारण कर रहा है जिसके लिए अपराधी पर अभियोग चलाया गया है, क्षतिपूर्ति प्रदान करने में उप-धारा (1) के अंतर्गत प्रतिकर के रूप में भुगतान की गई या वसूल की गई किसी भी राशि को ध्यान में रखेगा।"

10. सीताराम पासवान और एक अन्य बनाम बिहार राज्य, (2005) 13 एससीसी 110 में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है:-

"यह शक्ति जो विवेकाधीन है, का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़िता पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ प्रावधानों में सन्निहित सीमाओं के अधीन है और "कर सकेगा" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में अपराधी को रिहा करना है या नहीं, यह विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र तथा वाद की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है। अपराधी परिवीक्षा

"अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियां न्यायालय में तब निहित होती हैं जब किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय किया जा सकता है और यदि न्यायालय को लगता है कि वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा अपीलीय या पुनरीक्षण प्रक्रम पर भी किया जा सकता है और इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई के दौरान भी किया जा सकता है।"

11. लखनलाल उर्फ लखन सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 6 एससीसी 100 में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया:-

"10. इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 444 में 1958 के अधिनियम के प्रावधानों का परीक्षण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अपराधी 21 वर्ष से कम आयु के हैं, तो न्यायालय को यह व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें तब तक कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उनके साथ 1958 के अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना वांछनीय नहीं है, लेकिन 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के संबंध में, न्यायालय को पूर्ण विवेकाधिकार है कि वह ऐसे अपराधियों को भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

'4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है। मोटे तौर पर कहा जाए तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों के बीच, तथा उन अपराधियों के बीच जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और जो कम गंभीर अपराध के दोषी हैं, के बीच अंतर करता है। यद्यपि उन अपराधियों के मामले में जो 21 वर्ष से अधिक आयु के हैं, न्यायालय को

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के प्रकरण में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि, अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना वांछनीय नहीं है।'

11. इस न्यायालय ने जुगल किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1972) 2 एससीसी 633 में प्रावधान के औचित्य की व्याख्या करते हुए कहा कि युवा अपराधियों को जेल में कारावास की सजा दिए जाने की स्थिति में परिपक्व आयु के कट्टर अपराधियों के साथ उनकी संगति के परिणामस्वरूप युवा अपराधियों को दुर्दांत अपराधियों में परिवर्तित होने से रोकना है। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

'6. अपराधी परीक्षा अधिनियम 1958 में अधिनियमित किया गया था जिसका उद्देश्य कुछ श्रेणियों के अपराधियों को परीक्षा पर या उचित भर्त्सना के बाद रिहा करने और उससे जुड़े मामलों के लिए प्रावधान करना था। अधिनियम का उद्देश्य युवा अपराधियों को जेल में कारावास की सजा दिए जाने की स्थिति में परिपक्व आयु के कट्टर अपराधियों के साथ उनकी संगति के परिणामस्वरूप युवा अपराधियों को दुर्दांत अपराधियों में परिवर्तित होने से रोकना है। उपर्युक्त उद्देश्य दंडशास्त्र के क्षेत्र में वर्तमान प्रवृत्ति के अनुरूप है, जिसके अनुसार व्यक्तिगत अपराधियों के सुधार और संशोधन के लिए प्रयास किया जाना चाहिए न कि प्रतिशोधात्मक न्याय का सहारा लिया जाना चाहिए। आधुनिक आपराधिक न्यायशास्त्र यह मानता है कि कोई भी जन्मजात अपराधी नहीं होता है और कई अपराध सामाजिक-आर्थिक परिवेश की उपज होते हैं। यद्यपि कट्टर अपराधियों के लिए बहुत कुछ नहीं किया जा सकता है, फिर भी उन युवा अपराधियों में सुधार लाने पर काफी जोर दिया गया है जो बहुत गंभीर अपराधों के दोषी नहीं हैं और उनकी कट्टर अपराधियों के साथ संगति को रोकने पर भी। अधिनियम उपर्युक्त उद्देश्य को वैधानिक मान्यता देता है। इसलिए, यह प्रावधान किया गया है कि युवा

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अपराधियों को कुछ परिस्थितियों को छोड़कर जेल नहीं भेजा जाना चाहिए। हालांकि, इससे पहले कि अधिनियम का लाभ लिया जा सके, यह दिखाया जाना चाहिए कि दोषसिद्ध व्यक्ति, भले ही वह 21 वर्ष से कम आयु का हो, आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी नहीं है। यह अधिनियम की धारा 6 की भाषा से स्पष्ट है।”

12. मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2017) 2 एससीसी 198 में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग को निम्नानुसार दोहराया:-

“21. इस संबंध में, यह उजागर करने के लिए अन्य प्राधिकारियों का संदर्भ लेना भी उचित प्रतीत होता है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग कैसे किया जाना है। राम प्रकाश बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1972) 4 एससीसी 46 में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के संदर्भ में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 से निपटते हुए, न्यायालय ने राय दी कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त “कर सकेगा” शब्द का अर्थ “करना ही होगा” नहीं है। इसके विपरीत, जैसा कि उक्त प्राधिकार में अभिनिर्धारित किया गया है, इसे स्पष्ट रूप से स्पष्ट कर दिया गया है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधान 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों तथा उन अपराधियों के बीच जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और जो कम गंभीर अपराध के दोषी हैं, के बीच अंतर करते हैं। तत्पश्चात, न्यायालय ने यह प्रेक्षण करने के लिए आगे बढ़ा है:

‘7.... यद्यपि उन अपराधियों के मामले में जो 21 वर्ष से अधिक आयु के हैं, न्यायालय को पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर दे, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि वह उन्हें कारावास की सजा न दे जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना वांछनीय नहीं है। (रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 444 और रामजी मिसर बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1963 एससी 1088)।'

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त वाद में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के अंतर्गत अपराध को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत लाभ प्रदान करने से इनकार कर दिया।

22. हमने इस बात पर जोर देने के लिए उपर्युक्त प्राधिकार का उल्लेख किया है कि अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व न्यायालय को अपराध की प्रकृति और अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शामिल शर्तों को ध्यान में रखना चाहिए। दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 5 एससीसी 82 में यह बताया जाए कि, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संसद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल तभी जब न्यायालय यह राय बनाता है कि वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दोषसिद्ध व्यक्ति को सदाचरण के लिए परीक्षा पर रिहा करना समीचीन है और उन परिस्थितियों में से एक जिसे उक्त राय बनाने में दरकिनार नहीं किया जा सकता है, "अपराध की प्रकृति" है। न्यायालय ने आगे राय दी है कि यद्यपि यह तय करने का विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है कि न्यायालय को ऐसी राय कब और कैसे बनानी चाहिए, फिर भी प्रावधान स्वयं यह पर्याप्त संकेत प्रदान करता है कि दोषसिद्ध व्यक्ति को सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करना न्यायालय को समीचीन प्रतीत होना चाहिए। "समीचीन" शब्द की व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

'9. ... "समीचीन" शब्द का उपयोग संसद द्वारा इस खंड में विचारपूर्वक किया गया था जिसका अर्थ "दृष्टिकोण के अंत के लिए उपयुक्त और अनुकूल" था। ब्लैक डिक्शनरी में "समीचीन" शब्द को पहले बताए गए अन्य

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अर्थों के अतिरिक्त "किसी विनिर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त और उचित" के रूप में परिभाषित किया गया है। गुजरात राज्य बनाम जमनादास जी. पबरिल, (1975) 1 एससीसी 138 में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने "समीचीन" शब्द पर विचार किया है। विद्वान न्यायाधीशों ने पैरा 21 में इस प्रकार प्रेक्षण किया है:

'21.... पुनः, इस प्रावधान में प्रयुक्त "समीचीन" शब्द के अर्थ की कई छटाएं हैं। एक शब्दकोश अर्थ में, "समीचीन" (विशेषण) का अर्थ है "दृष्टिकोण के अंत के लिए उपयुक्त और अनुकूल", "व्यावहारिक और कुशल": "नीतिगत"; "लाभदायक"; "सलाह देने योग्य", "वाद की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त, उचित और अनुकूल"। एक अन्य छटा में, इसका अर्थ है एक उपकरण "जो सिद्धांत के बजाय मात्र उपयोगिता द्वारा चित्रित है, जो सार्वभौमिक रूप से सही है, उसके बजाय विशेष लाभ के लिए अनुकूल है" (देखें वेबस्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी)।'

10. इसके बाद यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय को उक्त शब्द का अर्थ प्रावधान के संदर्भ और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इसके व्यापक आयाम में करना चाहिए। यहां "समीचीन" शब्द का प्रयोग अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 में न्यायालय पर "अपराध की प्रकृति सहित वाद की परिस्थितियों..." को ध्यान में रखने का कर्तव्य थोपने के संदर्भ में किया गया है। इसका अर्थ यह है कि धारा 4 का आश्रय तब लिया जा सकता है जब न्यायालय मामले की परिस्थितियों, विशेष रूप से अपराध की प्रकृति पर विचार करता है, और न्यायालय अपनी राय बनाता है कि यह एक विनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए उपयुक्त और उचित है कि अपराधी को सदाचरण की परीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।"

13. चेल्लमल और एक अन्य बनाम राज्य, द्वारा पुलिस निरीक्षक, 2025 लाइव लॉ (एससी) 461 में, जहां सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थियों (सास और पति) को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



बी के आरोप से बरी कर दिया था, लेकिन उन्हें धारा 498-ए के अंतर्गत दोषसिद्ध किया था, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"विधिक स्थिति का सारांश देते हुए, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि कोई अपराधी अधिकार के रूप में परीक्षा प्रदान करने के आदेश की मांग नहीं कर सकता है, लेकिन उस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिसे वैधानिक प्रावधान परीक्षा प्रदान करके प्राप्त करना चाहते हैं और परीक्षा अधिनियम की धारा 4 की प्रयोज्यता के बिंदु पर इस न्यायालय के कई निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि, जब तक कि प्रयोज्यता को बाहर नहीं रखा जाता है, ऐसे मामले में जहां परीक्षा अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (1) में उल्लिखित परिस्थितियां आकर्षित होती हैं, न्यायालय के पास परीक्षा पर अपराधी की रिहाई पर विचार करने से चूकने का कोई विवेकाधिकार नहीं है; इसके विपरीत, न्यायालय पर यह विचार करने का एक अनिवार्य कर्तव्य थोपा गया है कि क्या उसके समक्ष प्रकरण बताई गई परिस्थितियों की पूर्ति पर अपराधी को रिहा करने की गारंटी देता है। परीक्षा प्रदान करने के प्रश्न का निर्णय किसी भी तरह से किया जा सकता है। यदि, न्यायालय अपने विवेक से परीक्षा का लाभ देने का निर्णय लेता है, तो वह परीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात ऐसी शर्तें लगा सकता है जो न्यायसंगत और उचित समझी जाएं। हालांकि, यदि उत्तर नकारात्मक हो, तो न्यायालय के लिए उसके कारण दर्ज करना ही न्यायसंगत और उचित होगा।"

14. हम अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत किए गए अभिवेदनों में पर्याप्त बल पाते हैं। घटना वर्ष 1982 की है और अपीलार्थियों की किसी भी गलती के बिना अपील इस न्यायालय में लगभग चवालीस वर्षों से लंबित रही है। छह माह के कठोर कारावास की सजा वर्ष 1988 में दी गई थी, और अपीलार्थियों को इतने लंबे समय के बाद जेल भेजना, जब वे पहले ही लगभग चार दशकों से लंबित आपराधिक अपील की पीड़ा और अनिश्चितता को झेल चुके हैं, न्याय के उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगा। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि अपीलार्थियों का कोई आपराधिक इतिहास है या उन्होंने विचारण या अपील के लंबित रहने के दौरान अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है। अपील के लंबित रहने के दौरान चार अपीलार्थियों में से छह की पहले ही मृत्यु हो चुकी है, जो स्वयं इस घटना के बाद से बीते समय की एक दुखद याद दिलाता है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



15. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 एक लाभकारी और सुधारात्मक विधान है, जिसका उद्देश्य युवा और पहली बार अपराध करने वालों को जेल के भ्रष्ट प्रभाव से दूर रखकर उन्हें कट्टर अपराधियों में परिवर्तित होने से रोकना है, और उन्हें दोषसिद्धि के सामान्य परिणामों के अधीन करने के बजाय सुधार का अवसर देना है, बशर्ते कि अपराध ऐसा न हो जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय हो। अपराध की अवधि, अपीलार्थियों की ओर से किसी भी आपराधिक इतिहास की अनुपस्थिति, और सबसे बढ़कर, लगभग चवालीस वर्षों से अपील की असाधारण रूप से लंबी पेंडेंसी को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि यह एक उपयुक्त मामला है जहां जीवित अपीलार्थियों, अर्थात् श्याम कार्तिक और दुर्गा को उनके अपराध के निष्कर्ष को बाधित किए बिना, कारावास के पर्याप्त दंडादेश के स्थान पर, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाना चाहिए।

16. तदनुसार, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। सत्र परीक्षण संख्या 106 वर्ष 1983 में द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323/149 के अंतर्गत अपीलार्थियों श्याम कार्तिक और दुर्गा की दोषसिद्धि को एतद्वारा बरकरार रखा जाता है और इसकी पुष्टि की जाती है। हालांकि, उन्हें दी गई कारावास की सजा को अपास्त किया जाता है।

17. अभियुक्त-अपीलार्थियों श्याम कार्तिक और दुर्गा को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अंतर्गत निम्नलिखित शर्तों के अधीन परिवीक्षा पर रिहा किया जाए:-

(i) अभियुक्त-अपीलार्थी छह माह की अवधि के लिए संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि की एक प्रतिभूति के साथ 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये) का एक "नया" व्यक्तिगत बंधपत्र इस वचन के साथ निष्पादित करेंगे कि वे शांति और सदाचरण बनाए रखेंगे और किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होंगे।

(ii) अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 का प्रयोग करते हुए, अपीलार्थी आज से एक माह की अवधि के भीतर पीड़िता/सूचनादाता को 10,000/- रुपये (दस हजार रुपये) (प्रत्येक अपीलार्थी द्वारा 5,000/- रुपये) का प्रतिकर देंगे। घायल/पीड़िता की मृत्यु होने की स्थिति में, अपीलार्थी उनके विधिक प्रतिनिधियों को समान रूप से इसका भुगतान करेंगे।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(iii) अपीलार्थी निर्धारित अवधि के भीतर संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त प्रतिकर राशि जमा करेंगे और विचारण न्यायालय, नोटिस और सत्यापन के पश्चात, उपर्युक्त राशि को बैंक खातों के माध्यम से पीड़िता/उसके विधिक वारिसों के बीच समान रूप से वितरित करेगा।

(iv) उपर्युक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियुक्त-अपीलार्थी मूल सजा को भुगतने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा को भुगतने के भागी होंगे।

18. विचारण न्यायालय अनुपालन सुनिश्चित करेगा और पर्यवेक्षण के लिए परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट मांगेगा।

19. अपीलार्थियों को निर्देश दिया जाता है कि वे आवश्यक बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए आज से दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों। व्यतिक्रम की स्थिति में, विचारण न्यायालय दंडात्मक प्रक्रिया जारी करने सहित विधि के अनुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र होगा।

20. अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ संबंधित विचारण न्यायालय को इस निर्णय की एक प्रति तत्काल प्रेषित की जाए।

21. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को यह भी निर्देश दिया जाता है कि अनुपालन के लिए जिला एवं सत्र न्यायाधीश, वाराणसी के माध्यम से संबंधित विचारण न्यायालय को एक सप्ताह के भीतर फैक्स/ई-मेल द्वारा इस आदेश की एक प्रति तामील करें।

(न्यायमूर्ति संतोष राय)

03 अगस्त, 2026

आरण

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”